



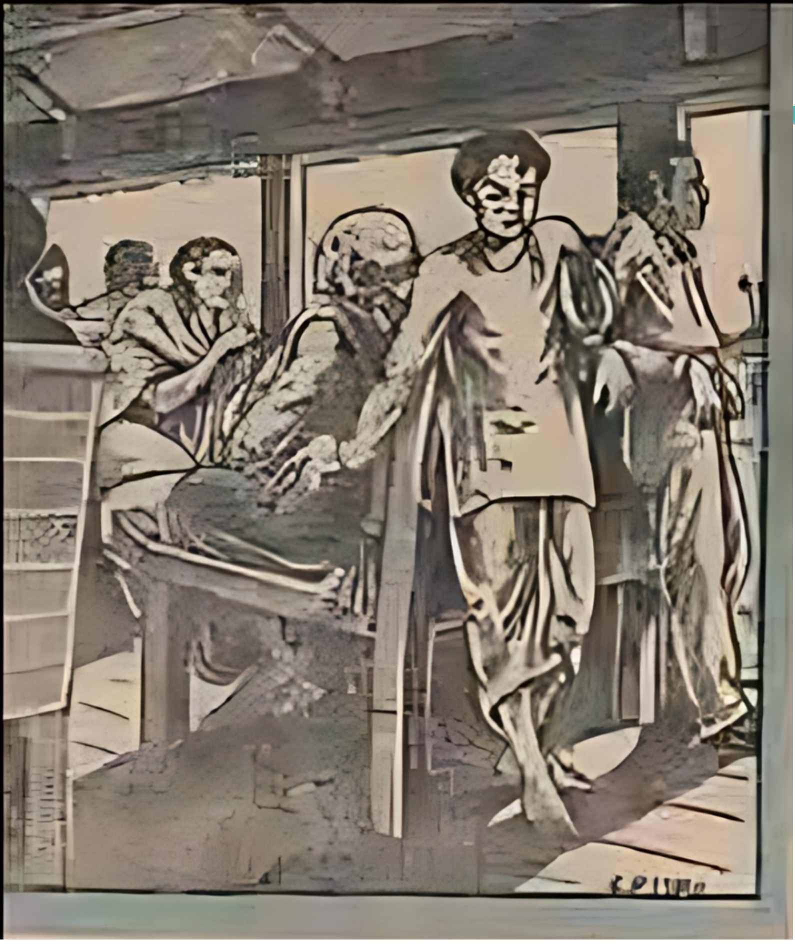
कलकत्ते के बाग-बाजार में कौड़ीमल नाम के एक लालाजी रहते थे। किसी समय उन्होंने व्यापार करके बहुत सा रुपया कमाया था। कुछ दिन बाद उन्होंने व्यापार बन्द कर दिया। क्योंकि घाटे का डर था। कुछ सोच-समझ कर उस रुपए से उन्होंने कलकत्ते के हर मोहल्ले में दो-दो तीन-तीन मकान खरीद लिए। उस समय मकान सस्ते थे और ज्यादा रुपया न लगता था।

इस तरह वे आज उनतीस मकानों के मालिक बन गए थे। लालाजी हर महीने अपने एक एक मकान के दरवाजे पर धरना देकर बैठ जाते और भाड़ा पाई-पाई वसूल कर लाते। फिर भी कभी वे उन मकानों की मरम्मत करवाने का नाम न लेते थे।

धीरे धीरे जब मकानों की तङ्गी हो गई तो उन्होंने हरेक का भाड़ा बढ़ा दिया। अगर कोई चूँ-चपड़ करता तो तुरन्त कहते-"मकान खाली कर दो।" कोई उनसे झगड़ा करता तो वे मकान के बिजली के तार कटवा देते या नल का पानी बन्द करके उसके नाकों दम कर देते। आखिर उसे मकान छोड़ कर जाना ही पड़ता।

लालाजी को हमेशा डर लगा रहता था कि वह किसी महीने किसी मकान का भाड़ा वसूल करना मूल न जाएँ। इसलिए उन्होंने अपने उनतीसों मकानों की किराएदारों के पूरे पते के साथ एक सूची भी तैयार कर ली थी। वे उसे हमेशा जेब में लिए घूमते थे। वे हरेक आसामी के नाम के सामने उसके किराए की रकम दर्ज कर रखते थे और उसके मुताबिक रुपया वसूल करते थे।

इसी तरह उन्होंने एक बार घर-घर जाकर भाड़े के रुपए वसूल किए और सूची के साथ बटुए में रख लिए। तब तक दोपहर हो गई थी। धूप बड़ी तेज थी। इसलिए वे एक ट्राम गाड़ी पर चढ़े। थोड़ी देर बाद उन्होंने ट्राम से उतर कर जेब में हाथ रखा



उसकी नजर पड़ गई थी। इसलिए वह उनकी बगल में ही जाकर खड़ा हो गया था। बेचारे लालाजी को क्या मालूम था कि कन्नीलाल का हाथ कब उनकी जेब की तरफ बढ़ा और कब उसने बटुआ निकाल लिया। इस तरह अपना काम पूरा करके कन्नीलाल बीच में ही ट्राम से उतर पड़ा। जाते-जाते वह एक निर्जन प्रदेश में ठहर गया। उसका भी भाग्य अच्छा न था। नहीं तो वह सीधे घर ही चला जाता।

तो बटुआ नदारद। लालाजी के पैरों तले से धरती खिसक गई। वे मुँह बाए खड़े रह गए। उनका चेहरा देख कर लोग चारों ओर से जमा हो गए और पूछने लगे कि बात क्या है ! क्या कुछ खो गया है ?

लेकिन वे क्या कर सकते थे। किसी ने कहा-"बटुआ खो गया है!" लोग अफसोस करते हुए वहाँ से चले गए। लेकिन कुछ लोगों ने एक दूसरे से कहा-"यह जरूर बेईमानी का पैसा होगा। इसीलिए जिस तरहआया बैसे ही चला गया।"

लालाजी जिस ट्राम पर चढ़े थे,उसी में कन्नीलाल नामक एक गिरहकट भी चढ़ा था। लालाजी के बटुए पर

बटुए में कितना है, यह देखने के लिए कन्नीलाल का मन बेचैन हो रहा था। इसलिए उसने एक बार चारों ओर देख लिया और बटुआ खोल कर रूपए गिनना शुरू कर दिया। बटुआ ठूँस ठूँस कर भरा था। यह देख कर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसने एक, दो, तीन कह कर गिनना शुरू किया। बटुए में कुल तीन सौ तिरासी रुपए थे।

गिन कर वह फिर बटुआ बन्द कर ही रहा था कि किसी की आवाज सुनाई दी-"कौन ! कन्नीलाल।"

कन्नीलाल ने पीछे फिर कर देखा तो उसके होश उड़ गए। वह पुलिस के थानेदार

मेघराज की आज थी। वह मुँह लटका कर खड़ा हो गया।

मेघराज ने कन्नीलाल के हाथ में ठूँस ठूँस कर भरा हुआ बटुआ देख लिया था। "क्यों कन्नीलाल ! तुम्हें जेल से निकले डेढ़ महीना भी न हुआ और तुमने फिर अपना काम शुरू कर दिया।" उसने कहा।

कन्नीलाल "हाँ !हूँ " करने लगा। तब मेघराज ने कहा-"बटुआ खोलो तो देखें।"

जब कन्नीलाल ने बटुआ खोल कर दिखाया तो मेघराज को रुपयों के अलावा लालाजी के आसामियों की सूची भी दिखाई दी। "उस कागज पर क्या लिखा है ?" मेघराज ने पूछा। बेचारे कन्नीलाल को क्या मालूम था कि उस कागज पर के नाम किसलिए लिखे हैं। लेकिन इतने में उसे एक सुन्दर उपाय सुझा। "थानेदार साहब ! इस सूची में मेरे दोस्तों के नाम और पते लिखे हुए हैं। मेरे बारे में आप क्या सोचते हैं, यह तो मुझे मालूम नहीं ! लेकिन इस बार जेल से निकलते ही मैंने अपनी चाल बदल दी। मैंने अब पुराना पेशा छोड़ दिया है।" कन्नीलाल ने गम्भीरता से कहा।



"बहुत अच्छा! लेकिन पहले यह बताओ कि तुम्हें यह बटुआ और ये रुपये कहाँ से मिले।" थानेदार ने पूछा।

"कहाँ से मिलेंगे साहब! यह मेरी गाढ़े की कमाई है। आप तो जानते ही हैं कि मैंने पुराने दिनों में कितना पाप किया था। मैंने सोचा कि किस तरह इस पाप से छुटकारा मिले। आखिर मैंने इरादा कर लिया कि जिन लोगों ने मुझे अच्छे रास्ते पर चलाने की कोशिश की है, उन सबको में कुछ रुपए भेजू। इसी इरादे से मैंने कड़ी मेहनत करके ये रुपए जमा किए। आज मेरा जन्म दिन है। मैंने सोचा, इससे अच्छा

समय कब मिलेगा ? इसलिए मैंने एक सूची तैयार कर ली कि किन किन को कितने कितने रुपए भेजने होंगे। अभी में सूची साथ लेकर रुपए मनीआर्डर करने के लिए जा रहा था कि आप मिल गए।" कन्नीलाल ने कहा।

मेघराज को मालूम था कि कन्नीलाल किस्सा गढ़ रहा है। इसलिए उसने कहा-"तो चलो, डाक घर चलें। मैं भी तुम्हारे साथ आता हूँ।" यह सुन कर कन्नीलाल के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। लेकिन वह इनकार करे तो कैसे ? रोनी सूरत बना कर थानेदार के साथ डाक घर गया और सूची के मुताबिक सारा रुपया मनीआर्डर कर दिया।

लेकिन इतने से पिण्ड न छूटा। डाक-घर के मुंशी ने रुपए गिन कर कहा -"लेकिन मनीआर्डर कमीशन कहाँ है ?" बेचारा कन्नीलाल कमीशन की बात ही भूल गया था। अगर उसे यह बात पहले ही याद आती तो कमीशन काट कर ही रुपए मेज देता। लेकिन अब क्या करता। आखिर उसे अपनी गाँठ से निकाल कर चार रुपए ज्यादा चुकाने पड़े।

दूसरे दिन लालाजी के घरों में रहने वाले उनतीस लोगों को मनीआर्डर मिले। उन बेचारों की समझ में न आया कि यह कन्नीलाल कौन है और उसने उनके घर का ठीक एक महीने का किराया क्यों भेजा है ? पीछे जब उन लोगों को मालूम हुआ कि लालाजी का बटुआ खो गया है तब उन्होंने सोचा -"जरूर किराए वालों में से ही किसी ने क्रोध के मारे लालाजी का बदला निकाल लिया और अपना रुपया लेकर भाई-चारे के नाते बाकी किराए वालों को उनका रुपया लौटा दिया है। यह सोच कर वे खामोश रह गए। बेचारे कन्नीलाल का जन्म दिन इस तरह कटा। जो रुपया हाथ लग गया था सो तो गया ही; साथ साथ उसके पसीने की कमाई भी चली गई।





वह कुल्ला करके अन्दर आ ही रहा था कि इतने में कोई मले मानुस "राजाराम कहाँ है!" कहते हुए कमरे में आए।

उन्हें देखते ही नारयण के होश उड़ गए। ये महाशय एक वकील थे। उसके पिताजी के ये पुराने दोस्त थे। पिताजी की जमीन-जायदाद के मामले सभी इन्हीं के हाथ में रहते थे। ये कभी कभी उनके घर आया करते थे और राजाराम से बहुत देर तक बातें करके चले जाते थे। उसके पिता कितने ही जरूरी काम में क्यों न हुए हों, इनके आने पर तुरन्त बात कर लेते थे।

वकील साहब नारायण के साथ कमरे में आकर बैठ गए। कुर्सी में आसन जमा कर बहुत देर तक बोलते रहे। सब मुकदमे मामलों के बारे में था।

नारायण की समझ में सिर्फ एक ही बात आई। वह यह कि कल राजाराम को एक मुकदमे में गवाही देनी थी। उसी की गवाही पर सारा मुकदमा दारोमदार था। वाह से क्या क्या सवाल पूछे जाएँगे उनके क्या क्या जवाब देने चाहिए, इसके बारे में वकील ने नारायण को बहुत समझाया।

लेकिन नारायण का मन कहाँ कहाँ था ! वह तो यह सोच रहा था कि कल अदालत में जाने से कैसे उसकी जान बचे ?

वकील साहब दस बजे तक बातें करके चले गए। लेकिन उस रात नारायण को नींद न आई। न जाने, उसके पिता क्या हो गए ? वह क्या करेगा? वह यही सोचने में लगा रहा। अचानक नारायण के मन में उसके पिता के प्रति आदर का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा "बड़ों का संसार अलग है। उसमें मुझको हाथ न डालना चाहिए था। अब पछताने से क्या फायदा? उसने नासमझी के कारण अपने पिता के प्रति अन्याय किया। उसके पिता ने उसका



क्या बिगाड़ा था। यही न कि उसे पढ़ने को कहा ? यह तो उसी की भलाई के लिए था। उसके पिता ने बचपन में अच्छी तरह पढ़ा-लिखा। तभी तो बड़े होकर घर का सारा काम काज सम्हाल सके। अगर भगवान की कृपा से मैं फिर कभी पहले की ही तरह लड़का बन गया तो इस बार बड़ों के प्रति कोई शिकायत न करूँगा।" नारायण ने सोचा।

उसी समय राजाराम आकर अन्धेरे में घर के चबूतरे पर बैठा हुआ था। बात यह हुई कि राजाराम ढाई बजे की गाड़ी पर चढ़ तो गया। लेकिन दो तीन स्टेशन तक जाने के बाद टिकट बाबू ने आकर टिकट माँगा। अगर राजाराम सचमुच नया होता तो शायद वैसी गुनाहगार की सी शकल न बनाता। लेकिन वह अपना कसूर जानता था। इसलिए तुरन्त पकड़ा गया। उसकी जेब में एक कौड़ी भी न थी। टिकट बाबू ने उसे तीन चार थप्पड़ लगाकर अगले स्टेशन पर गाड़ी से उतार दिया। लाचार होकर राजाराम सोलह मील तक पैर घसीटता, पैदल चल और भूख-प्यास से बेदम होकर रात के यारह बजे घर पहुँचा। किबाड़ खटखटाने से सब लोग जाग जाते और उस पर सवालों की झड़ी लग जाती। इसलिए वह चबूतरे पर बैठ कर सोचने लगा कि अब क्या किया जाए ! उसने सोचा कि अब वह एक दिन भी इस लड़के की काया में नहीं जी सकता। बच्चों

की दुनियाँ अलग थी। वह उस दुनियाँ से बहुत दूर चला आया था। इसीलिए वह बच्चों का स्वभाव न जान सका। उसने समझा कि उसका लड़का जिद्दी है। लेकिन उसने उसकी तकलीफें न जानीं। उससे प्यार से बोले कितने दिन हुए? क्या पिता का यही धर्म था ? राजाराम ने सोचा कि नगर भगवान की कृपा से कभी उसे पहले का सा रूप मिल गया तो इस बार वह अपने लड़के को अच्छी तरह प्यार करेगा। उसे तनिक भी तकलीफ न होने देगा।

देवी लक्ष्मी ने जब वैकुण्ठ से यह सब देखा तो भगवान विष्णु से कहा- "भगवन! उन बेचारों को फिर पहले के से रूप दे दीजिए !"

भगवान ने हामी भर दी। तुरन्त चबूतरे पर बैठा हुआ राजाराम फिर राजाराम वन गया। कमरे में पलङ्ग पर लेटा हुआ नारायण भी फिर पहले जैसा हो गया।

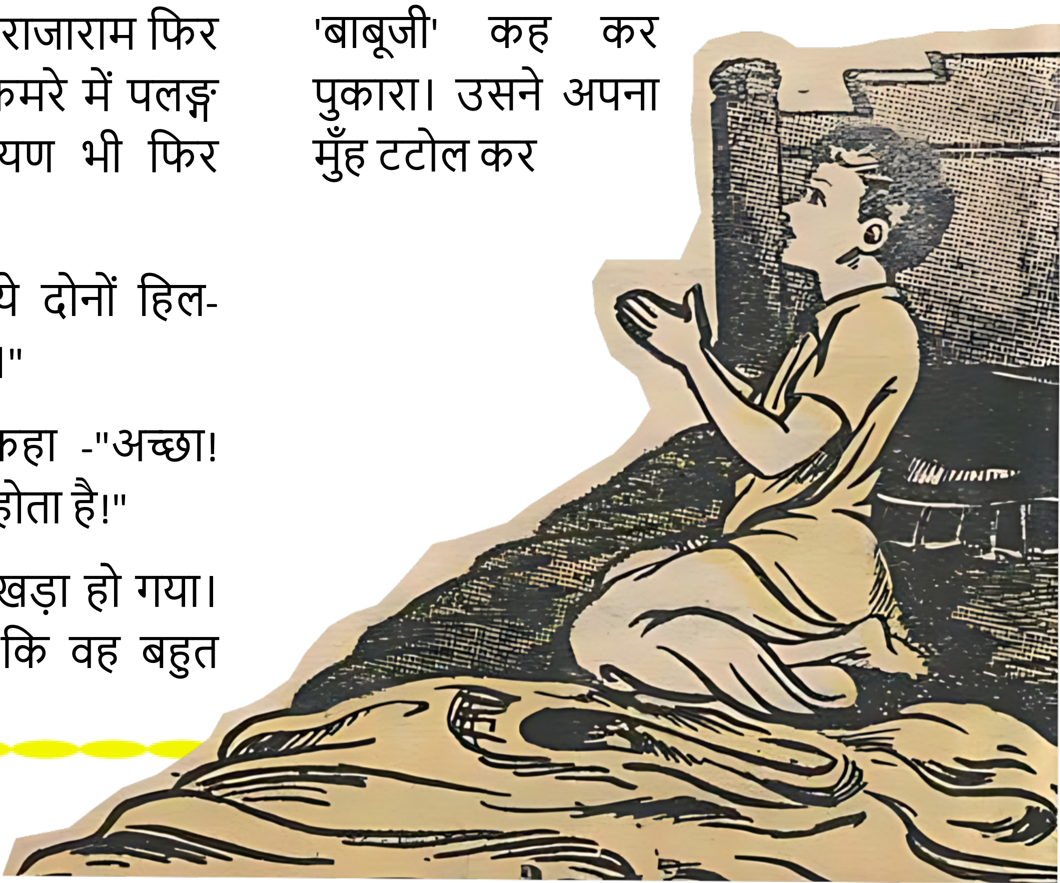
देवी ने सोचा-"अब ये दोनों हिल-मिल कर प्रेम से रहेंगे।"

लेकिन भगवान ने कहा -"अच्छा! देखोगी न, अभी क्या होता है!"

राजाराम चबूतरे पर खड़ा हो गया। अब उसे ऐसा लगा कि वह बहुत ऊँचा हो गया है। लेकिन उसे पूरी तरह मालूम न था कि वह पहले जैसा हो गया है। चबूतरे पर बैठे बैठे उसका मन ऊब गया था। इसलिए राजाराम ने हिम्मत करके दरवाजा धीरे धीरे खटखटाया। उसने सोचा कि महाराजिन दरवाजा खोलेगी तो वह किसी न किसी तरह समझा देगा।

महाराजिन ने दरवाजा खोला तो राजाराम को देख कर दङ्ग रह गई। "आप बाहर कब गए बाबूजी! अभी तो आप कमरे में लेटे हुए थे। आपको बाहर छोड़ कर किवाड़ किसने लगा दिए हैं ?" उसने पूछा।

लेकिन राजाराम यह सब नहीं सुन रहा था। उसका ध्यान तो 'बाबूजी' शब्द पर लगा हुआ था। इतने दिन बाद महाराजिन ने फिर उसे 'बाबूजी' कह कर पुकारा। उसने अपना मुँह टटोल कर



देखा। मूँछ और चश्मा हाथ लगे। खुशी के मारे राजाराम की आँखो से आँसू बह चले। उसके मुँह से बात तक न निकली।

महाराजिन की आवाज सुन कर नारायण भी नीचे उतर आया। अपने पिता को देख कर उसका मुँह सफेद फक हो गया। उसने अपने हाथ पाँव देखे तो मालूम हो गया कि उसका भी रूप बदल गया है।

नारायण को देख कर राजाराम का बदन गुस्से से जल उठा। यह सब इसी बदमाश की करतूत थी। इसी ने उसे स्कूल भेजा। मास्टर से पिटवाया। इसी ने उसकी देह चुरा ली। देह ही नहीं, अलमारी की चाभियाँ और रुपए-पैसे भी चुरा लिए। "क्यों रे। अब तेरी उछल-कूद खतम हो गई?" राजाराम ने कहा।

अपने पिता को देख कर नारायण का मन भी गुस्से से भर गया। उसके पिता ने ही तो उसकी सुन्दर फुर्तीली देह चुरा कर अपनी बूढ़ी काया उसे सौंप दी थीं। वह न तो पेट भर खा सकता था, न पहले की तरह उछल-कूद ही सकता था और न पेड़ पर ही चढ़ सकता था। उल्टे अब उस पर बिगड़ रहे थे। "मेरी ही नहीं; आपकी उछल-कूद भी खतम हो गई।" उसने गुस्से से जवाब दिया।

"देखा तुमने ? वे अपनी मूल आप ही सुधारेंगे! हमें इसमें दखल देने की जरूरत नहीं। इन्हें दो बार मौका मिला। लेकिन देखा, क्या फायदा हुआ? ये तो जैसे के वैसे ही बने रहे।" भगवान ने लक्ष्मीदेवी से कहा।

[समाप्त]





किसी गाँव में तीन डाकू रहते थे। वे नजदीक के एक पहाड़ की घाटी में छिपे रहते थे और उस राह से जाने वाले लोगों का मार-पीट कर सब कुछ लूट लेते थे। एक दिन की बात है। डाकू झाड़ियों की आड़ में छिपे बैठे थे। इतने में उन्होंने देखा कि एक साधू पहाड़ की ओर से दौड़ा आ रहा है। देखने से ऐसा मालूम होता था, जैसे कोई वाघ या शेर उसका पीछा कर रहा है।

डाकू झाड़ियों में से निकले और साधू को रोक कर कहा-"अजी! इस तरह बेतहाशा क्यों भागे जा रहे हो?"

तब उस साधू ने थर-थर काँपते हुए कहा-"क्या कहूँ ! उस पहाड़ में एक गुफा है। मैंने सोचा कि चलूँ, उस गुफा में बैठ कर तप करने में बड़ा अच्छा होगा। लेकिन वहाँ जाकर देखा तो मालूम हुआ कि वहाँ मौत रहती है। मुझे डर लगा कि अगर मैं पल भर भी वहाँ खड़ा रहा तो वह मुझे निगल ही जाएगी। इसलिए में उलटे पाँव भाग चला। मुझे रोको मत! अगर भला चाहते हो तो तुम लोग भी यहाँ से सिर पर पाँव रख कर भाग जाओ।"

उसकी ये बातें सुन कर डाकुओं ने अचरज के साथ कहा-"क्या कहते हो, मौत ? इतने दिनों से हम लोग पहाड़ के आस-पास डाका डालते आए हैं। अनेको राहियों को मार मार कर उनसे रुपए-पैसे, गहने-जवाहर छीनते आए हैं। लेकिन हमारी कभी मौत से भेंट न हुई। क्या तुम हमें मौत की जगह दिखा सकते हो !'

साधू ने इनकार किया। लेकिन डाकुओं ने नहीं माना। उन्होंने उसे डराया धमकाया। तब लाचार होकर साधू उन्हें गुफा की तरफ ले चला। गुफा में जाने पर उन्हें सामने ही

नारायण प्रसाद



सोने की एक बड़ी ढेरी दिखाई दी। गहनों में जवाहरात जड़े हुए थे। उनकी रोशनी से सारी जगह जगमग हो रही थी। गुफा में अन्धेरे के बदले दिन की सी रोशनी हो रही थी। तीनों डाकू अचरज से उस ढेरी को देखते खड़े रह गए। उन्हें अपनी आँखों पर आप ही विश्वास न होता था। "हमारी आँखों के सामने जो खजाना दिखाई दे रहा है, क्या यह सच्चा है ? कहीं यह सब जादू तो नहीं है ? या हम कहीं सपना तो नहीं देख रहे हैं ? क्या हमने जिन्दगी में कभी धन की इतनी बड़ी ढेरी देखी थी ? वाह! हम कैसे खुशनसीब हैं। सचमुच संसार में सबसे हमारी ही नसीब अच्छी है।" डाकू अपने मन में कहने लगे।

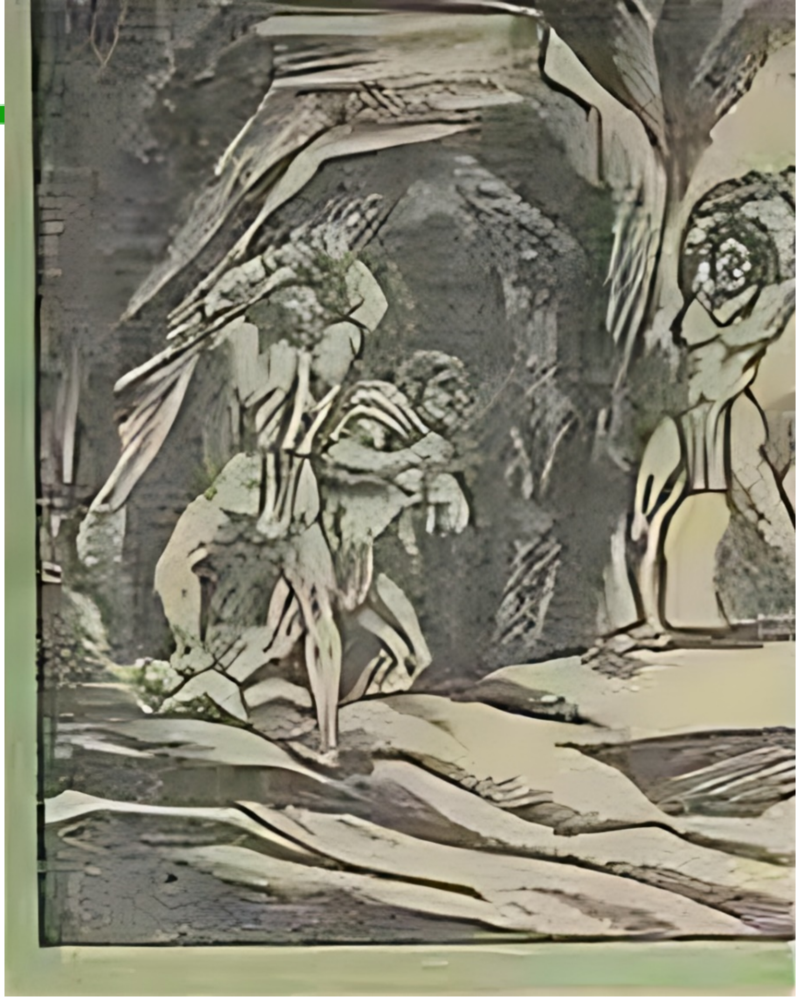
तब साधू ने उनकी और फिर कर कहा-"भाइयो! यह धन की ढेरी ही आदमी की मौत है। इसलिए चलो। तुरन्त भाग जाएँ। अगर हम पल भर भी रुके तो फिर हमारी खेरियत नहीं। तुम आओ या न आओ। में तो चला।" यह कह कर वह साधू सिर पर पैर रख कर तुरन्त वहाँ से भाग गया।

साधू का यह कहना कि उस बेशुमार दौलत की ढेरी में मौत रहती है, सुनकर डाकुओं को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने सोचा- "हो न हो, यह साधू जरूर पागल था।" वे बड़ी खुशी से उस ढेरी को आपस में बाँटने की तैयारी करने लगे। लेकिन उस ढेरी की चीजों को गिनना कोई आसान काम न था। हिस्से लगाते लगाते उनका जी ऊब गया, हाथ दुखने लगे, दम फूलने लगा और भूख भी लगने लगी। तब उनमें से एक ने कहा-"मैं गाँव जाकर खाने पीने की चीजें ले आता हूँ। तुम दोनों यहीं रह कर इस ढेरी पर पहरा देते रहो। मेरे लौटने के बाद तीनों इस धन को बाँट लेंगे। उसकी बात

बाकी दोनों ने मानी और उसे गाँव भेजा। गाँव जाने वाले ने जाते जाते अपने मन में सोचा-"मेरे ये दोनों साथी कितने बेवकूफ हैं। वे दोनों सोचते हैं कि मैं सचमुच उनके लिए खाना लाने ही जा रहा हूँ। वे भोन्दू क्या जानें कि मैंने सारा धन हड़पने के लिए अपने मन में पहले से ही एक उपाय सोच रखा है। ये दोनों हिस्सा चाहते हैं। हिस्सा ! तीन हिस्से लगाएँगे और मुझे एक हिस्सा देंगे। देखूँगा कि मैं एक हिस्सा लेता हूँ या तीनों! यह सोचते हुए वह मन ही मन कल्पना करने लगा कि उतना सारा रुपया लेकर वह क्या क्या काम कर सकता है।

इपर अपने साथी के जाते ही गुफा में एक ने दूसरे से कहा-"भई ! देखी तुमने इसकी अकल ! हमें उसके लौट आने तक पहरा देने को कहा। जैसे पहरा देना हमारा काम और हिस्सा बाँट लेना उसका ! तुम तो जानते हो, क्यों-क्यों हिस्सेदार बढ़ते हैं, हिस्से घटते जाते हैं। इसलिए इसे हिस्सा नहीं देना चाहिए !"

सब दूसरे ने कहा-"मैं भी यही सोच रहा था। लेकिन बताओ! इससे पिण्ड कैसे छूटेगा !"



"इसमें क्या रखा है! हम दोनों गुफा के मुँह पर छिपकर बैठेंगे। ज्यों ही वह अन्दर कदम रखेगा त्यों ही दोनों दो लाठियों लेकर टूट पड़ेंगे। बस, वह अपना बचाव भी न कर सकेगा।" पहले ने उपाय बताया।

दूसरे को भी यह अच्छा लगा। दोनों अपनी अपनी लाठियाँ लेकर गुफा के मुँह पर बैठ गए और अपने साथी के आने की राह देखने लगे।

थोड़ी देर में उनका साथी खाने-पीने की चीजें लेकर लौटा। उसकी आहट सुनते ही दोनों सम्हल कर खड़े हो गए और उसके अन्दर कदम रखते ही तड़ातड़ लाठियाँ

बरसाने लगे। उसका तो बस, कचूमर ही निकल गया।

इस तरह अपने साथी को धन के लिए बलिदान करके उन दोनों ने अपने हाथ-पाँव धो लिए। फिर खाने की चीजें अन्दर ले जाकर घन की देरी को लालच से देखते हुए भोजन करने लगे। खाकर उन्होंने पानी पिया। तुरन्त उनके पेट में शूल सी उठी और बार बार मतली सी जाने लगी। थोड़ी देर में उनकी छटपटाहट और भी बढ़ गई। अब उन्हें मालूम हुआ कि भोजन में जहर मिला था। तब पहले ने दूसरे से कहा-"देखा गई, तुमने ! इस पापी ने कैसा काम किया। इसने हम दोनों को जहर देकर मारने और खुद सारी दौलत हड़प जाने की सोची थी।" यह कह कर वह उसको गालियाँ देने लगा ।

तब दूसरे ने जवाब दिया-"भई। नाहक उसे क्यों कोसते हो! हमने उससे क्या कम किया है ? यह तो सूप और छलनी वाला किस्सा है। सच पूछो तो हमीं ने उससे ज्यादा पाप किया है। इतने दिन तक हम सब भाई-भाई की तरह मिल कर रहते थे। लेकिन आज इस दौलत की ढेरी को देखते ही हम सब की नीयत बिगड़ गई और तीनों आपस में लड़ मरे। साधू ने कहा था कि इस धन की ढेरी में मौत है। तब हमने उसे पागल समझा और उसका मजाक उड़ाया। लेकिन देखो न ! आखिर क्या हुआ ?"

लेकिन अब पछताए होत क्या चिड़ियाँ चुग गई खेत! थोड़ी देर में जहर ने अपना पूरा असर दिखाया और वे दोनों तड़प-तड़प कर दौलत की ढेरी के सामने मर गए।





करीब दो सौ साल पहले सिंहाचल के मन्दिर में नरसिंह भगवान रहते थे। कृष्णाचार्य उनके एक भक्त थे, जिनके ऊपर भगवान की बड़ी कृपा थी। कृष्णाचार्य जब भक्ति से बिह्वल होकर भगवान के सामने मधुर कण्ठ से गान करते तो भगवान ऐसे प्रसन्न होते कि गान के ताल पर नाचने लग जाते। बहुत दिनों तक यही होता रहा। यह देख कर कृष्णाचार्य के मन तरह का घमण्ड पैदा हो गया। उन्होंने सोचा - "नरसिंह भगवान का मैं सबसे प्यारा भक्त हूँ। वे मेरी बात कभी नहीं टालते हैं।"

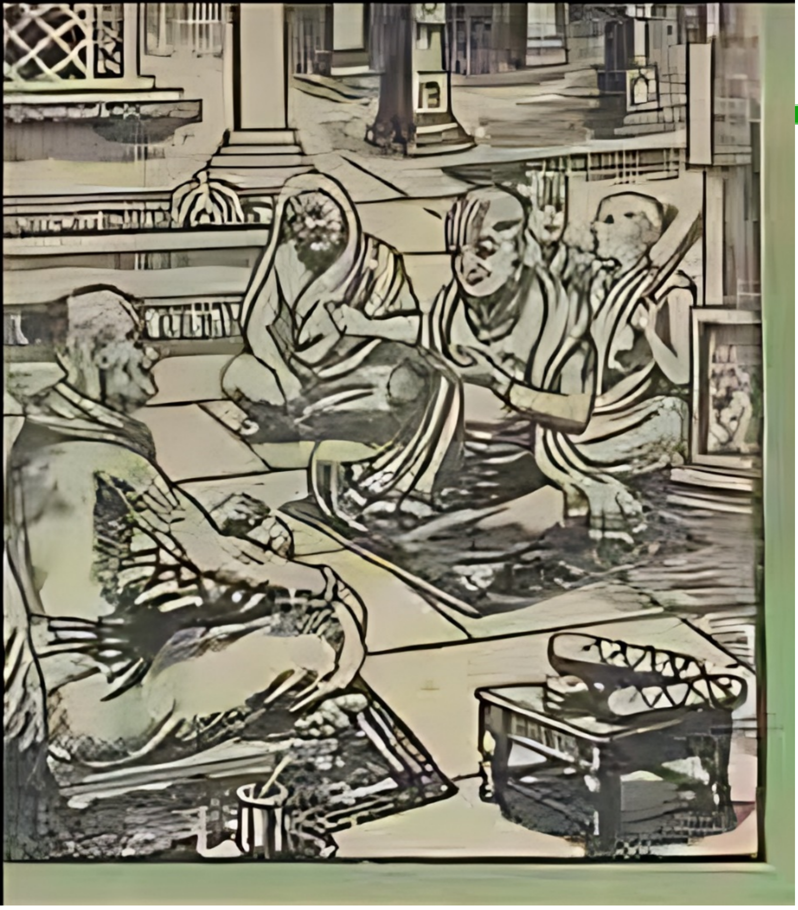
उन्हीं दिनों विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक आचार्य रामानुज सारे देश में अपनी विजय का डङ्का बजाते सिंहाचल आ पहुँचे। सब लोग रामानुज को विष्णु का अवतार मानते थे। इसलिए अनेक तरह से उनका आदर-सत्कार होने लगा।

लेकिन कृष्णाचार्य ने गर्व के मारे उनकी और आँख उठा कर भी न देखा। यहाँ तक कि प्रणाम भी ने किया।

महात्मा रामानुज से यह सब क्या छिपता ? उन्हें हो गया कि कृष्णाचार्य के मन में किस बात का घमण्ड है। इसलिए वे स्वयं कृष्णाचार्य की ओर मुड़े और विनय के साथ पूछा-"भक्तबर! आप से मेरी एक विनती है। मैं जानता हूँ कि आप रोज भगवान के

सामने गान करते हैं और भगवान आपके सामने प्रत्यक्ष होकर नृत्य भी करते हैं। इसलिए इस बार जब भगवान आपके सामने प्रत्यक्ष होंगे तो आप उनसे पूछिएगा-"भगवान !बताइए, रामानुज को मुक्ति मिलेगी कि नहीं।"

जब इस प्रश्न का जवाब मिल जाए तब अपने बारे में पूछिएगा- "भगवान! मुझको मुक्ति मिलेगी कि नहीं!" इन दोनों



प्रश्नों का उत्तर पूछ कर आप कल मुझे बता दीजिए। मेरी आपसे यही बिनती है।"

उनकी ये बातें सुन कृष्णाचार्य मन ही मन बहुत खुश हुए। क्योंकि उन्होंने सोचा-"जिस रामानुज के आगे सारा संसार सिर झुकाता है उसी को मेरी कृपा की भीख माँगनी पड़ती है !"

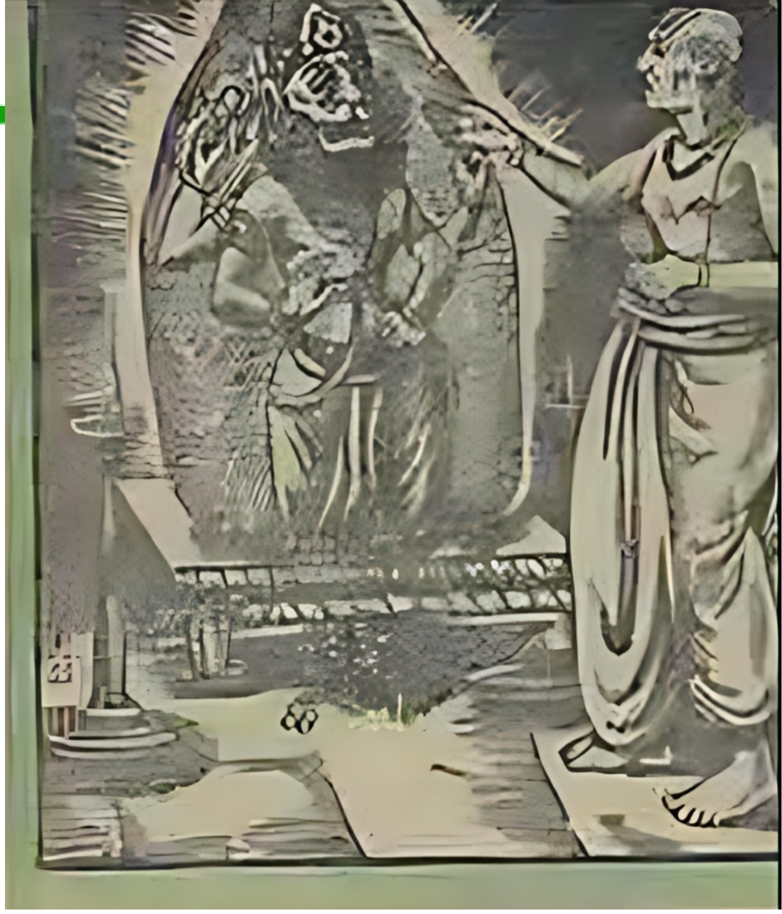
उस रात जब गाना सुन कर भगवान प्रत्यक्ष हुए तो कृष्णाचार्य ने पूछा-"हे भगवान! श्री रामानुज नाम के एक आचार्य आजकल यहाँ आए हुए हैं। वे जानना चाहते हैं कि उनको मुक्ति मिलेगी कि नहीं।"

तब भगवान ने जवाब दिया -"ऐ मेरे प्यारे भक्त ! श्री रामानुज तो भगवान के अंश- रूप हैं। वे तो दूसरों को भी मुक्ति दे सकते हैं। इसलिए यह प्रश्न ही व्यर्थ है। तुम्हारी बात सुन कर मुझे हंसी जाती है।"

"तो भगवान! और एक बात बताइए। मुझे मुक्ति मिलेगी कि नहीं !" कृष्णाचार्य ने सहम कर सवाल किया।

यह सुन कर भगवान ने कहा- "कृष्णाचार्य! तुम मुझे बहुत प्यारे हो! मैं बहुत चाहता हूँ कि तुम्हें मुक्ति मिले। लेकिन क्या करूँ ? मुक्ति देना मेरे हाथ नहीं है। क्योंकि वह अधिकार तो मैं कभी का रामानुज को दे चुका हूँ। इसलिए अगर तुम सचमुच मुक्ति चाहते हो तो तुम्हें इसके लिए रामानुज की शरण लेनी पढ़ेगी।"

भगवान की ये बातें सुन कर कृष्णाचार्य का गर्व चूर-चूर हो गया। उन्हें बहुत गुस्सा आ गया। "इतने दिन तक मैंने तुम्हारी जो सेवा की, क्या उसका यही फल है। मुक्ति के लिए क्या मुझे दूसरों के आगे हाथ पसारना होगा ? भक्ति के वश होकर मैंने इतने दिन



तक तुम्हारा गुणगान किया। लेकिन आखिर तुम मुझे इस तरह चकमा देना चाहते हो ?" कृष्णाचार्य ने भगवान को मनमाना कोसना शुरू किया।

आखिर भगवान उनके कठोर वचन सह न सके। इसलिए उन्होंने कहा - "कृष्णाचार्य ! तुम अभी मद-मात्सर्य आदि दुर्गुणों से दूर नहीं हुए हो। मैंने नहीं सोचा था कि तुम्हारे हृदय में इतना द्वेष भरा हुआ है। तुम कहते हो कि तुमने मेरी सेवा की और गुण-गान गाया। ठीक है; लेकिन मैंने भी तो तुम्हें अपना नृत्य दिखाया है। बस बदला चुक गया। तुमने अभी बिना सोचे-विचारे जोश में आकर मुझे कोसा। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ; जाओ ! तुम्हारे रचे गीत नीच लोगों के हाथों में पड़ेंगे और लुप्त हो जायेंगे।" भगवान ने कृष्णाचार्य को शाप दिया।

यह सुनकर कृष्णाचार्य का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने कहा-"हे नरसिंह देव! मैंने अपना सर्व तुम्हारे ऊपर अर्पण कर दिया। लेकिन अन्त में तुमने मुझे कहीं का न रखा। मेरा सारा जीवन तुमने नष्ट कर दिया। तो सुनो- अगर मेरी मक्ति सच्ची है तो तुम्हारा सारा मन्दिर और इस पहाड़ का शिखर सात दिन तक आग में जलता रहेगा और एक दम बरबाद हो जाएगा।" क्रोध में अन्धे हुए कृष्णाचार्य ने भगवान को शाप दे दिया।

भगवान के शाप के कारण कृष्णाचार्य के सभी गीत नीच लोगों के हाथ पड़ कर लुप्त हो गए। जाचार्य के शाप के कारण कुछ दिनों के बाद 'मलिक नेव' नामक मुसलमान सरदार ने एक बड़ी भारी सेना लेकर सिंहाचल पर चढ़ाई कर दी। वह उस मन्दिर को बरबाद कर देना चाहता था।

यह खबर यहीं नजदीक के रहने वाले महाभक्त, महाकवि श्री कूर्मनाथ को पहले ही मालूम हो गई। तुरत वे अकेले दौड़े आए और मन्दिर के अन्दर जाकर, आसन लगा कर अपनी सुन्दर कविता गा-गाकर भगवान की प्रार्थना करने लगे। उन्होंने नरसिंह का नाम लेकर कविता पढ़े और जोशीले शब्दों में मुसलमानों के अत्याचारों का वर्णन करके उनके नाश के लिए विनती की। उन्होंने भगवान को उलहना दिया और कहा कि तुम अपने भक्तों को लुट जाते देख कर भी चुप खड़े रहते हो।

यों कूर्मनाथ ने जब अडसठ कविता पढ़े तो भगवान प्रसन्न हो गए और उन्होंने मुसलमानों को मार भगाने के लिए भौंरों की एक सेना खड़ी कर दी।

भौंरों के वे झुण्ड मुसलमानों पर टूट पड़े और उनको डङ्क मारने लगे। बेचारे मुसलमानों को न सूझा कि इस विचित्र शत्रु का कैसे सामना किया जाए। वे तुरन्त सिर पर पैर रख कर भागने लगे। तलवारें म्यान में ही रह गई। उन्हें बाहर निकालने तक का मौका न मिला।

इस तरह भौरों ने दस मील तक उनका पीछा करके मार भगाया। मुसलमानों की सेना ने यों भागते भागते विशाख-पतन से आधे मील की दूरी पर एक टीले पर जाकर दम लिया। बस उस दिन से उस टीले का नाम भौरों का टीला पड़ गया। भौरों का टीला आज भी उसी जगह है। आजकल वह मरघट के रूप में काम जाता है। इस तरह कवि कूर्मनाथ की ओज मरी वाणी से सावधान होकर भगवान नरसिंह ने मुसलमानों को मार भगाया। पीछे कूर्मनाथ ने इन कवित को मिला कर 'नरसिंह-शतक' नाम की एक पुस्तक रची।





एक समय दुनिया की सभी पवित्रता स्त्रियाँ एक जगह जमा हुई। वे एक सभा करना

चाहती थीं। जमा तो हुई। लेकिन सभा न हो सकी। क्योंकि सभा के लिए एक सभापति (या समापत्नी) की जरूरत होती है।

अब वहाँ सवाल यह उठा कि किसको यह पद दिया जाए ! बहुत सोचने-विचारने पर भी यह सवाल हल न हुआ। बहुत सी गुट-बंदियाँ हुई। गरमागरम बहसें हुई और तीन चार घण्टे तक बैठने पर भी कोई निश्चय न हो सका। तब सभी उठ कर अपने अपने घर चली गई।

लेकिन झगड़ा यहीं खतम न हुआ। सरस्वती ने जाकर अपने पति ब्रह्माजी से कहा-"देखा आपने उन सबका दुस्साहस ! क्या मैं सब पतिव्रताओं में बड़ी नहीं हूँ ? अगर मैं सबसे बड़ी सती न होती तो आप मुझे अपनी जीभ पर क्यों रखते ?"

उधर लक्ष्मी ने भी अपने पति भगवान विष्णु से शिकायत की-" इस संसार में मुझसे बढ़ कर सती और कौन है ? नहीं तो आप मुझे अपनी छाती पर जगह क्यों देते !"

पार्वती ने भी अपने पति से जाकर पूछा-"क्या मैं सबसे बड़ी सती नहीं हूँ। इसीलिए तो आपने मुझे अपना आधा अङ्ग ही दे डाला है।"

सीता, सावित्री, अरुती, अनसूया और सुमति आदि सतियों ने भी अपने पतियों से जाकर यही शिकायत की कि वे सबसे बड़ी पतिव्रता क्यों न मानी गई। सभी का मुँह लटक गया था। इतने में नारद जी कहीं से पधारे। उन्होंने हरेक पतिव्रता के घर जाकर कहना शुरू किया-"देवी! मुझे मालूम हुआ है कि तुमसे भी बड़ी पतित्रता भूलोक पर है।"

"मैं अपने पति को काल के गाल से बच्चा लाई। क्या वह मुझसे भी बड़ी पतिव्रता है ?" सावित्री ने पूछा।



"मैंने अपने शील की रक्षा के लिए तीनों लोक-पालकों को शिशु बना कर दूध पिलाया। क्या वह मुझसे भी बड़ी सती है ?" अनसूया ने कहा।

"मैंने अपने पति के प्राण बचाने के लिए सूरज को निकलने से रोक लिया। बताओ, क्या वह मुझसे भी महिमा बाली है।" सुमति ने सवाल किया।

बाकी औरतों ने भी इसी तरह के सवाल किए। "हाँ, हाँ, वह तुम सबसे बड़ी पतिब्रता है।" नारद ने निश्चित स्वर में कहा।

तब इन सभी औरतों के मन में कुतूहल हुआ कि जाकर देखें, वह कौन है? कैसी है?

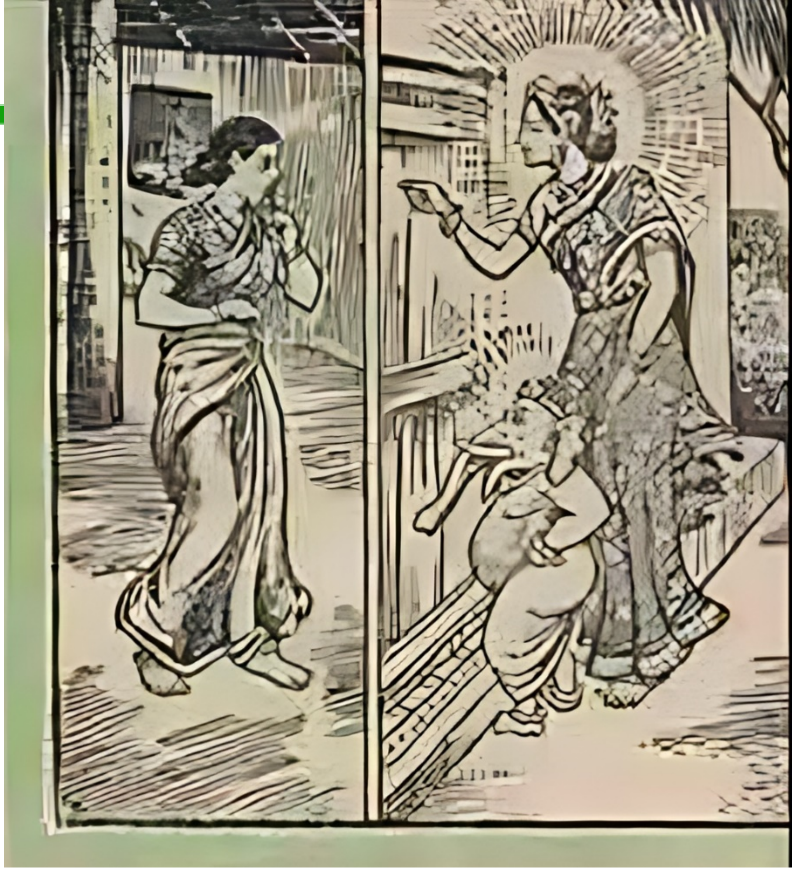
"अगर तुम सभी जत्थे बाँध कर जाओगी तो वह डर के मारे प्राण छोड़ देगी। इसलिए एक एक करके जाकर देख आओ।" नारद ने सलाह दी।

नारद से उस सती का पता जान कर पहले पार्वती उससे भेंट करने चलीं। नारद ने जिस घर का पता दिया था यह एक छोटी सी झोंपड़ी थी। दरवाजे पर टट्टी लगी हुई। श्री पार्वती ने खड़ी होकर पुकारा-"देवी ! जरा दरवाजा खोलो। मैं पार्वती तुम्हारे घर आई हूँ।"

लेकिन उस भली औरत ने बिना दरवाजा खोले ही जवाब दिया-"देवी जी ! मुझे मालूम नहीं था कि आप हमारे घर पधारेंगी। नहीं तो पहले ही अपने पति से पूछ लेती कि दरवाजा खोलूँ या नहीं। दुर्भाग्यवश वे आज घर पर नहीं हैं। रात को आएँगे तो मैं उनकी इजाजत ले लूँगी और कल दरवाजा खोलूँगी। इसलिए आप कृपा करके कल फिर आइए।"

पावती चकित होकर चुपचाप लौट गई। उस झोपड़ी में रहने वाली महासती का नाम गौरी था। वह उस गाँव में घास काट कर जीविका चलाने वाले गंगू की स्त्री थी।

शाम को गंगू घास का गट्ठर बेच कर घर लौट आया तो गौरी ने पार्वती की बात उसको सुनाई और दूसरे दिन दरवाजा खोलने की इजाजत माँगी। गंगू ने कोई एतराज़ न किया।



दूसरे दिन पार्वती फिर उस झोंपड़ी के पास आई। माँ को कहीं जाते देख कर गणेश ने जिद की कि मुझे भी साथ लेते चलो ! इसलिए पार्वती आज उसे भी साथ लेती आई थी।

गौरी ने पार्वती की आवाज सुन कर दरवाजा खोलना चाहा कि इतने में उसे गणेश की आवाज भी सुनाई दी। "देवी! आपके साथ और कौन आए हैं ?" उसने पूछा।

"और कोई नहीं, मेरा बेटा गणेश है।" पार्वती ने कहा।

तब गौरी ने बिना किवाड़ खोले ही जवाब दिया-"देवी ! रात मैंने पति की इजाजत तो ले ली थी। लेकिन उन्होंने आप एक के लिए ही इजाजत दी थी। मुझे नहीं मालूम था कि आपके बेटे भी आ रहे है। नहीं तो उनके लिए भी इजाजत ले लेती। आज रात को अपने पति से भाप दोनों के लिए दरवाजा खोलने की इजाजत ले लूँगी। इसलिए आप दोनों कल पधारिए!" बेचारी पार्वती उस दिन भी यों ही लौट गई। दूसरे दिन जब वे इस पतिव्रता से मिलने चली तो कार्तिक ने भी आना चाहा।

लेकिन पार्वती को एक बार अनुभव हो चुका था। इसलिए उन्होंने उसे आने नहीं दिया।

गौरी ने इस बार पार्वती के आते ही दरवाज़ा खोल कर बड़ी आव-भगत की। पार्वती ने अन्दर जाकर चारों ओर देखा। उन्हें उस झोपड़ी की सफाई देख कर बहुत अचरज हुआ। लेकिन सामान ज्यादा न था। एक तिपाई थी और एक दरी बिछी हुई थी।

एक ओर एक हाँडी थी। बगल में चूल्हा जल रहा था। एक ओर एक तवा था और एक थाली में गुथा हुआ आटा रखा था। एक ओर छत से एक रस्सी लटक रही थी और दीवार पर एक साँटा।

पार्वती ने बातचीत शुरू करने के ख्याल से एक एक चीज की ओर इशारा करके पूछना शुरू किया कि वह क्या काम अती है!

"यह तिपाई मेरे पति के बैठने के लिए है। जब वे बहुत थके हुए होते हैं, तो खाट पर दरी बिछाकर लेट जाते हैं। अगर वे भूखे हों तो उस हाँडी में भात है। उनका रोटी खाने का मन हुआ तो आटा भी तैयार है। चूल्हे पर तवा चढ़ा दूँगी और पल भर में रोटियाँ सेंक लूँगी।" गौरी ने पावती को समझाया।

पार्वती को उस गरीचिन ने पति के आराम के लिए जो इन्तजाम किए थे, देखकर बहुत खुशी हुई। लेकिन उनकी समझ में न आया कि वह रस्सी और साँटा किसलिए हैं । जब उन्होंने यही सवाल पूछा तो गौरी ने जवाब दिया-"जब पति को किसी करण मुझ पर गुस्सा आ जाता है तो वे मुझे उस रस्सी से बाँध देते हैं और उस साँटे से मारते हैं। जरूरत पड़ने पर रस्सी और साँटा कहाँ खोजने जाएँगे ! इसलिए मैंने उन्हें ऐसी जगह रख दिया जहाँ तुरन्त निगाह पड़ जाए।"

ये बातें सुन कर पार्वती के अचरज का ठिकाना न रहा। उन्होंने सोचा- "संसार में बहुत सी प्रसिद्ध पतिव्रताएँ हैं। यह सच है कि वे पति के हाथ मार खाकर चुप रह जाती हैं। लेकिन ऐसी सती और कोई न होगी जो रस्सी और बेंत इस काम के लिए पहले ही से लाकर रखे। नारद का कहना सच है। गौरी ही संसार की सबसे बड़ी सती है।" उन्होंने लौट कर गौरी की कहानी सब को सुनाई और बहुत सराहा।





एक समय की बात है। पाटलीपुत्र पर चन्द्रगुप्त का राज था। चन्द्रगुप्त ने अपने विशाल राज्य को अनेक प्रान्तों में बाँट दिया था। एक एक प्रान्त का एक एक शासक था। उसके सभी शासक अपनी सन्तान की तरह प्रजा का पालन करते थे। उनके कारण राजा का यश और भी बढ़ गया।

लेकिन विदर्भ प्रान्त के शासक को लोग रिश्वतखोर और जालिम कहते थे। इसलिए राजा ने निश्चय किया कि उसको उस पद से हटा कर उस जगह पर एक अच्छे न्यायी शासक को नियुक्त किया जाए।

इतने में एक दिन कुछ लोगों ने राजा के पास आकर कहा-"हुजूर! यहाँ से तीन कोस पर एक जङ्गल है। उस बङ्गल में ढोर चराने वाला एक ग्वाला है। उसका नाम धरमू है। उस धरमू का भाग्य क्या कहा जाए कि उसके बराबर इन्साफ कोई नहीं कर सकता। वह कानून की गहरी से गहरी गुत्थियाँ भी यों ही सुलझा देता है। बस, दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है। इसलिए अब सब लोग अदालतों में जाना छोड़ कर उस जङ्गल में धरमू के पास जाने लग गए हैं।"

उनकी बातें सुन कर राजा को बहुत अचरज हुआ। "तो उस ग्वाले पर लोगों की इतनी श्रद्धा हो गई ! तब जरूर उसमें कुछ न कुछ विशेषता होगी। यह सोच कर उसने जङ्गलों में रह कर ढोर चराने वाले उस घरमू को अपने दरबार में बुला भेजा। उसने बेशकीमती पोशाक बगैरह देकर उसका सत्कार किया और एक आसन पर बिठा कर कहा- "भाई धरमू ! में तुम्हारे अच्छे गुणों और तुम्हारी न्यायशीलता की तारीफ सुन चुका हूँ। इसलिए मेरी इच्छा है कि तुम्हें विदर्भ प्रान्त का शासक बना दूँ !"

जगत सिंह



"हुजूर की जो मर्जी ! लेकिन मुझमें उतनी काबिलियत कहाँ ? मैं कोई घड़ा बुद्धिमान तो हूँ नहीं। कहीं लोग मुझे शासक बनते देख कर मजाक न उड़ाने लग जाएँ।" धरमू इस प्रकार अपनी असम्मति प्रगट करने लगा।

लेकिन राजा का हुक्म टाला नहीं जा सकता था। इसलिए उसे अपना मुँह बन्द करके वह जिम्मेदारी लेनी पड़ी।

धरमू के शासक बनने के बाद भी लोग उसकी प्रशंसा करते ही रहे। लेकिन कुछ दिन बाद कुछ लोगों ने राजा के पास जाकर कहा-"हुजूर! घरमू अब पहले का सा नहीं रह गया है। उसका स्वभाव बदल गया है। वह अब खूब रिश्वत लेने लग गया है।"

उनकी शिकायत सुनकर राजा ने कोई जल्दवाजी नहीं की। उसने कहा -"ऊँचे पद को देख कर हरेक के मन में ईष्या पैदा होती है। इसलिए लोग अकसर झूठी बातें फैलाया करते हैं। इसलिए जब तक में अपनी आँखों से न देख लूँगा, सब तक इन पर कोई विश्वास न करूँगा।

"हुजूर! ये झूठी अफवाह नहीं हैं। धरमू आजकल हाथी पर चढ़कर राज में घूमने जाता है। उसके पीछे सिपाही घोड़ों पर चढ़ कर चलते हैं। खैर, इसमें तो कुछ नहीं! यह सब तो जरूरी है। लेकिन सब के पीछे कुछ नौकर एक काठ का सन्दूक लिए चलते हैं। क्या हुजूर ने कभी वह सन्दूक देखा है ?" उन लोगों ने राजा से पूछा ।

इस बार राजा के मन में भी कुछ खटका पैदा हो गया। सन्दूक की बात सुनकर उसके मन में कुतूहल भी पैदा हुआ कि चल कर देखें तो सही उस सन्दूक में क्या है? इस ख्याल से राजा खुद विदर्भ प्रान्त की ओर चल पड़ा। बीच में ही उसे धरमू दल-

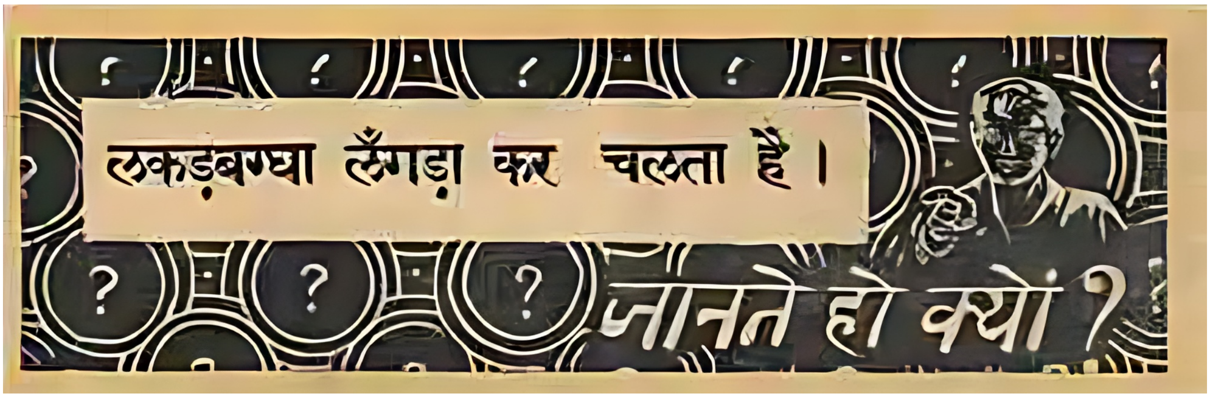
बल के साथ आता दिखाई दिया। सब के पीछे नौकरों के हाथों में एक काठ के सन्दूक पर भी उसकी नजर पड़ी। यह देख कर राजा के मन में तुरन्त विचार उठा कि उसने जो कुछ सुना, सब सच है। धरमू सचमुच रिश्वत लेने लगा है। वह हराम का पैसा रखने के लिए यह सन्दूक पीछे पीछे लिए घूमता है। धीरे धीरे उसके मन में इसका विश्वास हो गया। आखिर उसने धरमू को रोका और बातों के सिलसिले में उससे कहा-"क्यों धरमू ! तुम हमेशा अपने साथ बहुत सा रुपये लिए चलते हो क्या ? जरा हमें भी दिखाओ, उस सन्दूक में क्या है !" यों हँसी-खेल में ही राजा ने उस सन्दूक का ढकना खुला कर देखा। लेकिन यह क्या? उस सन्दूक में तो राजा के दरबार में आने के समय धरमू जो फटे-पुराने चीथड़े पहने हुए था, उन के सिवा और कुछ न था। सब लोग हैरान हो गए यह देख कर।

आखिर राजा ने धरमू से उस सन्दूक का रहस्य जानना चाहा।



तब धरमू ने कहा-"हुजूर! मैं अचानक एक भिखारी से बड़ा अमीर बन गया। मुझे आशा हुई कि इससे कहीं मेरा मिजाज़ भी आसमान पर न चढ़ जाए। इसलिए में वे कपड़े एक सन्दूक में रख कर हमेशा साथ लिए चलता हूँ, जिससे मुझे पहले की बातें याद आती रहें। अगर मैं बीते दिन भूल जाता तो जरूर मेरा भी पतन हो जाता। तब में लोगों के लिए सच्चा न्याय न कर पाता। लेकिन इन्हीं कपड़ों की कृपा से मैं बच गया।"

तब राजा मन ही मन बहुत लज्जित हुआ। और उसने धरमू की बहुत प्रशंसा की।



एक बार लकड़बग्घा जङ्गल की सैर करने चला। राह में उसे एक खरहा मिल गया। "खरहे मामू । खरहे मामू । क्या खबर है! जङ्गल की खबरें तो सुनाओ!" लकड़बग्घे ने कहा।

"खबरें तो बहुत हैं। सुनो, आज मैंने एक विचित्र जीव को देखा है।" खरहे ने कहा।

खरहे की बात सुनकर लकड़बग्चे का कुतूहल बहुत बढ़ गया। उसने उस विचित्र जीव के बारे में और कुछ बताने की प्रार्थना की।

तब खरहे ने कहा -"क्या बताऊँ! इस जीव के पैर हैं; पर नाखून नहीं।नाखून की बात ही क्या जब उँगलियाँ ही नहीं हैं। फिर उसके पैर भी दो हिस्सों में चिरे रहते हैं। तुम्हारे मन में जिस रङ्ग का ख्याल आता है, वही रङ्ग उसके बदन पर दिखाई देता है। यानी बह पल पल पर रङ्ग बदलता रहता है।" इतना कह कर वह और भी कुछ बताने जा रहा था कि लकड़बग्घा खिलखिला कर हँस पड़ा।

लकड़बग्घे के मन में न आया कि खरहा गिरगिट का ही इतना लम्बा चौड़ा वर्णन कर रहा है। उसे तो खरहे को यों वर्णन करते सुन कर हँसी आ गई थी। तब से यह जब कभी खरहे की बातें याद करता तो उसे जोर की हँसी आ जाती। धीरे-धीरे उसे इस तरह हँसने की आदत हो गई।

लकड़बग्घे को इस तरह बिना कारण हँसते देख कर सभी जानवरों ने समझा कि वह पागल हो गया है। वे उसकी खूब हँसी उड़ाने लगे।

यह देख कर लकड़बग्घे को बड़ा गुस्सा आ जाता था। यहाँ तक कि रोनी सूरत बना कर सोचने लगता था- "यह क्या ? मैं पागल

की तरह क्यों हँसने लगा हूँ। मैं खुद नहीं जानता कि क्यों हँस रहा हूँ। हाँ, उस दिन सैर करते समय खरहे ने मुझसे एक विचित्र जीव के बारे में बातें की थीं। तब से मैं पागल की तरह हँसने लगा हूँ। अब तो बहुत कोशिश करने पर भी यह आदत नहीं छूटती। हाय ! मैं क्या करूँ ?" यह सोच कर लकड़बग्घे को खरहे पर बड़ा गुस्सा आ गया।

एक दिन जब उसे फिर खरहा मिला तो उसने अपना सारा गुस्सा उस पर उतार दिया। उसने उसे खूब कोस कर अपने मन की कसर निकाली और अन्त में मजाक उड़ाया-"अहा ! क्या सूरत है ! तिस पर देखो, वे लगड़ी टाँगें।"

उसकी बातें सुन कर खरहे को बहुत गुस्सा आ गया। लेकिन उसने उस समय कुछ नहीं कहा। एक दिन खरहे ने लकड़बग्घे से कहा-"चलो। टहलने चलें।" यह कहकर वह उसे एक वीरान जगह ले गया। वहाँ उसने कहा-"आओ हम दोनों बाजी लगाएँ कि कौन आँख मूँद कर पीछे की और वेग से चलता है।"

बेवकूफ लकड़बग्घा राजी हो गया और तुरन्त आँख मूँद कर पीछे की ओर चलने लगा। जाते जाते यह एक गढ़े में गिर पड़ा और उठ भी न सका।

आखिर जब खरहे ने आकर उसे सहारा देकर उठाया तो देखा कि पिछली दोनों टाँगें टूट गई हैं। तब उसने कहा-"ऐ बेवकूफ लकड़बग्घे। मैंने मजाक में तुझे एक अजीब किस्सा सुनाया। तुम वह तो समझ न सके। उलटे गलत फहमी में पड़कर मुझको कोसा और मखौल उड़ाया। अब देखो, जरा अपनी टाँगें। अब बताओ, किसकी टाँगें लँगड़ी हैं। अब जरा चलो तो देखें कैसे चलते हो।" यह कर वह उसकी हँसी उड़ाने लगा। उस दिन से लकड़बग्घा लँगड़ा कर चलने लगा।





कौन !..., मास्टर साहब !....